१९

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

अनेकान्त और स्याद्वाद

रचियता—
अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" जी महाराज

सम्पादक—
डा० नानक चन्द जैन 'समरस'
सान्तौल हाउस, मौ० ठठेरवाड़ा, मेरठ शहर
फोन : २२०५५

प्रकाशक—
खेमचन्द, जैन सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)
फोन : ५४१२१७

द्वितीय संस्करण २२०० जन० १९९३ मूल्य १ रुपया

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री १०५ क्षु० गुरुवर्य मनोहरजी वर्णी

श्री सहजानन्द जी महाराज

के जीवन-परिचय का संक्षिप्त दिग्दर्शन

जन्म स्थान—दुमदुमा (जिला टीकमगढ़), बुन्देलखण्ड (म० प्र०)

जन्मतिथि—कार्तिक कृष्णा दशमी ब्रह्ममुहूर्त सं० १९७२, सन् १९१५

जन्मराशि व जन्मनाम—सिंहराशि, श्री मदनमोहन

विद्यारम्भस्थान व आयु—बरवासागर, ५॥ वर्ष

प्रारंभिक विद्यार्जन व विद्यार्जन में छत्रछाया—प्राइवेट पाठशाला दुमदुमा, महाराज श्री की चाची सिंघेन चिरोंजाबाईजी व पं० श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी, मुकाम सागर म० प्र०

विशेष विद्यार्जन व उत्तीर्ण परीक्षायें—श्री सत्तर्क दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय सागर में, न्यायतीर्थ व सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

विद्यार्जन समाप्तिकाल—अप्रैल सन् १९३३, साढ़े सत्रह वर्ष की आयु

प्रधानाध्यापक—संस्कृत विद्यालय बरवासागर, विद्यासमाप्ति के बाद

विरक्तिकाल—सन् १९४२, २७ वर्ष की आयु में

गृहत्यागकाल—सन् १९४३, आयु २८ वर्ष

आजीवन ब्रह्मचर्य व व्रतप्रतिमास्थान—शान्तिनिकेतन ईसरी १९४३ ई०

सप्तम प्रतिमा ग्रहण—बनारस के बाहर प्रथम पड़ाव ईसरी १९४३ ई०

गुरुकुल स्थापना—सहारनपुर में, १९४५ ई० आयु ३० वर्ष

अष्टम प्रतिमा ग्रहण—दि० जैनमन्दिर जवाहरगंज जबलपुर १९४६ ई०

नवम प्रतिमा ग्रहण—बरवासागर सिद्धचक्रविधान फाल्गुन १९४७ ई०

दशम प्रतिमा ग्रहण—मंदिर बेलनगंज आगरा १९४८ ई०

क्षु० दीक्षा ग्रहण—श्री हस्तिनापुर क्षेत्र, १९४९ ई०

हस्तिनापुर गुरुकुल स्थापना—सहारनपुर गुरुकुल का परिवर्तन सन् ४९–५० ई० में करके यह गुरुकुल बनाया।

दीक्षागुरु—पूज्य श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी

साहित्यनिर्माण—१९४२ से १९७८ तक, ग्रन्थ संख्या लगभग ५००

शरीरत्याग काल—२९ मार्च, सन् १९७८ त्यागीभवन सदर मेरठ।

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

अनेकान्त और स्याद्वाद

रचियता—
अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" जी महाराज

सम्पादक—
डा० नानक चन्द जैन 'समरस'
सान्तौल हाउस, मौ० ठठेरवाड़ा, मेरठ शहर
फोन : २२०५५

प्रकाशक—
खेमचन्द, जैन सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)
फोन : ७८८१७

द्वितीय संस्करण २२०० जन० १९९३ मूल्य १ रुपया

आत्म-कीर्तन

हूं स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।।टेक।।
मैं वह हूँ, जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ रागवितान ।।१।।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।
सुख दुःख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःख का नहिं लेश निदान ३
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम ।।४।।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूँ अभिराम ।।५।।

卐◆◆卐

मंगल-तन्त्र

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।
मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं
मैं ज्ञानघन हूँ, मेरे स्वरूप में अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं
मैं सहज आनंदमय हूँ,मेरे स्वरूप में कष्ट नहीं,अतः स्वयं तृप्त हूँ
ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

卐◆◆卐

सम्पादकीय

'जात्यान्तर भाव को अनेकान्त कहते हैं' ऐसा यह आगम का निर्देश है। ष. ख. पुस्तक १५

'पदार्थ अनेक धर्मवाला है, अनित्य है, नित्य है, एक है, अनेक है, यों नाना धर्मरूप पदार्थ ज्ञान में आये ऐसे पदार्थ को अनेकान्त कहते हैं। परन्तु यदि हम पदार्थ को अनेकान्तात्मक जानते ही जानते रहें और ऐसी चर्चा करते ही रहें तो निर्विकल्पता कहां से आएगी। अतः अनेकान्त का यह अर्थ लगावें—

'एकः अपि अन्तः न विद्यते सः अनेकान्तः'

जहां एक भी धर्म न हो उसे कहते हैं अनेकान्त। यदि सामान्य दृष्टि से देखा जाय तो अभेद अखण्ड अनुभवात्मक चैतन्य तेज पृथक्-पृथक् धर्मों की दृष्टि से रहित होता है। और विकल्प रहित अनुभव में आता है।' पु. सि. प्र.

वस्तु को प्रगट करने वाला वाङ्मय भी अनेकान्तमय है। जो 'जगतत्त्वं प्रकाशयत्' संसार के सम्पूर्ण तत्त्वों को प्रकाशमान करता है।

जब तक जीव को पर्यायबुद्धि रहती है तब तक अनाद्यनन्त, स्वसहाय, अखण्ड चैतन्यमय निज तत्त्व पर दृष्टि नहीं

होती । अनेकान्तमयी चित्प्रकाश लीलामात्र में ही मोहमहान्धकार वितान को लुप्त करने वाला है ।

निज शुद्ध चैतन्यतत्त्व जो दूध में घी की भांति प्रतिसमय विद्यमान है, अव्यक्त है परन्तु है ज्ञानगम्य । उसका ज्ञान में प्रतिभासित होना ही संसार का विच्छेद है, ऐसा रसास्वादन होते ही भव संतति का अन्त होता है । अनन्त धर्मों का आधारभूत एक चैतन्य द्रव्य है । वह सामान्य विशेषात्मक है । सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं । अर्थ क्रियाकारित्व उस समग्र वस्तु का प्राण है ।

यहां पर अनेकान्त को अर्थ क्रिया के आधार पर नैगमनय से सिद्ध कर रहे हैं कि सामान्य में भी अर्थ परिणमन होता है और विशेष में भी । और जो दोनों को विषय करके रहता है और ऐसा होने पर भी टंकोत्कीर्ण अनादि अनन्त अहेतुक स्वपरप्रकाशक ज्ञान स्वभावी निर्विकल्प उपयोग में आता है वह है जात्यन्तर भाव अर्थात् अनेकान्त ।

निर्देश—जात्यन्तर भाव को अनेकान्त कहते हैं ।

स्वामित्व—चतुर्थ गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक के सम्यग्दृष्टि जीव ।

साधन—दर्शन मोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम ।

अधिकरण—श्रुत ज्ञानोपयोग ।

स्थिति—सादि अनंत ।

विधान—द्वादशांग-द्वयनेक द्वादश भेदं ।

जात्यान्तर कहते हैं दो भावों का मिलकर एक रूप हो जाना जैसे आम की कच्ची पक्की अवस्था मिलकर एक ही रसरूप हो गई । तो सामान्य ने तो यह अर्थ क्रिया की कि वस्तु के समस्त परिणमनों में अन्वय का ज्ञान कराया और विशेष ने स्व द्रव्य का अन्य समस्त तत्त्वों से व उनके परिणमनों से भिन्न होने का बोध कराया । अतः अर्थ क्रिया कारित्व की अपेक्षा सामान्य और विशेष के भिन्न भिन्न कार्य होने पर भी जो वस्तु का अभिन्न एक स्वभाव है वह अनादि अनन्त अहेतुक स्व पर प्रकाशक स्वभावी है । उसे चाहे जात्यान्तर कहो अथवा अनेकान्त कहो एक ही बात है । यह निर्णय नैगमनय का है ।

'नैगमनय की अपेक्षा कथंचित सत् व असत् कार्य उत्पन्न होता है । जो विद्यमान है वह भेद व अभेद इन दोनों का उल्लंघन करके नहीं रहता इस कारण जो उन दोनों में किसी एक को विषय न करके विवक्षा भेद से दोनों को विषय करता है वह नैगम नय है ।' (ष. ख. १५)

ऋजुसूत्र नय से जो पर्याय को स्वतन्त्र सत् मानने का एकान्त क्षणिक वादियों व कुछ जैन मनीषियों ने भी किया है उसका निराकरण वर्णी जी ने इस प्रकार किया है ।

'स्याद्वाद के आश्रय बिना सच होकर भी झूठ—स्याद्वाद-शासन एक ऐसा हितकारी शासन है कि जो इस जीव को सुरक्षित धाम में पहुँचा देता है। ज्ञान के विषय अनेक हैं, पर कोई विषय ऋजुसूत्रनय का है, कोई विषय व्यवहारनय का है, कोई विषय द्रव्यार्थिकनयका है व कोई शुद्धनयका है। मुख्य तीन चार बातें यहाँ बतला रहे। किसी भी नय-का एकान्त कर लिया गया तो उस नयकी बात सच होकर भी झूठ हो जाती है। जैसे ऋजुसूत्रनयका विषय यह है कि प्रत्येक पर्याय स्वतंत्र है, अहेतुक है, वह पूर्वपर्याय से उत्पन्न नही होती है। यह विषय ऋजुसूत्रनयका है और ऋजुसूत्रनय जैन सिद्धान्त का ही एक अङ्ग है—यह बात ऋजुसूत्रनय से सत्य है। लेकिन जब इसका प्रतिपक्षीनय जो है व्यवहारनय, द्रव्यार्थिकनय उसका विरोध अगर करें, सर्वथा ही ऐसा मानें और कहें कि संतान नहीं है, ऐसा ही है, पूर्वपर्याय से कुछ मतलब नहीं, स्वतंत्र है तो यह बन गया मिथ्यात्व और यह सिद्धान्त बन गया खुद बौद्धों का। बौद्धों का यह सिद्धांत है ऐसा कि प्रति समय का जो पदार्थ है, वह अहेतुक है, उसका पूर्व पदार्थ से मतलब नहीं। देखो सर्वथा ही ऐसा हो याने अगर पर्याय स्वतंत्र हो तो उसमें ६ साधारण गुण होने चाहियें। यह तो कायदेकी बात है। इसमें यह तो

अ आ इ ई से सिखायी जाने वाली बात है सो यह तो कठिन बात नहीं। जो स्वतंत्र द्रव्य है, इसमें ६ साधारण गुण होते हैं—यह तो समझ में आना कोई कठिन नहीं। तो पर्याय अगर स्वतंत्र पदार्थ है तो उसमें अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व, ये गुण पाये जाते हैं क्या ? जैन सिद्धान्त का यह क्रम है कि भक्तिपूर्वक यदि बच्चा भी सीखे तो उसे कहीं धोखा नहीं हो सकता। बोलो है क्या पर्याय प्रदेशवान ? बोलो है क्या उसमें वस्तुत्व, द्रव्यत्व ? जो गुणपर्यायवान हो सो द्रव्य है। अब बतलावो वह पर्याय गुणपर्यायवान है क्या ? पर्याय में पर्याय है, गुण है क्या ? हाँ यह ऋजुसूत्रनय से तो ठीक है। जैन सिद्धान्त ने इसका समर्थन किया है। पर इसकी हठ में वस्तुस्वरूप नहीं बनता। देखो यही तो है जैनाभासों का बौद्धदर्शन, जो सच होकर भी झूठ बन गया। वैशेषिक दर्शन में देखिये वैशेषिक यह कहते हैं कि द्रव्य स्वतंत्र है, गुण स्वतंत्र है, पर्याय स्वतंत्र है, सामान्य स्वतंत्र है, विशेष स्वतंत्र है। तो एक नय से अगर देखें तो स्वरूप एक का दूसरे में नहीं है। जो द्रव्य का स्वरूप है वह गुणपर्याय सामान्य विशेष का नहीं, जो गुण का स्वरूप है वह द्रव्यपर्याय सामान्य विशेष इनका नहीं। जो सामान्य का स्वरूप है सो विशेष आदि का नहीं। अरे विशेष का स्वरूप है सो शेष का नहीं। यों भेद तो आ

गया। ये ५ चीजें हैं, मगर कोई सर्वथा भेद करे तो वहीं आपत्ति आयगी कि जैसे द्रव्य में ६ साधारण गुण हैं तथा गुणपर्यायवत्ता है, ऐसे ही गुण में भी बताओ, पर्याय में भी बताओ, सामान्य और विशेष में भी बताओ। हैं तो नहीं इन प्रत्येक में गुण व पर्याय। तो देखो ये ५ बातें हैं जो भेद-दृष्टि से सच हैं, पर प्रतिपक्षनय का विरोध करने से सच भी झूठ बन गया। यह ही है व्यवहार का विषय जो बताया। व्यवहार भेद करता है और द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष—ये भेद करना व्यवहार का विषय है। इसी का एकान्त कर लिया और अभेदनय का आश्रय न लिया तो काम न बनेगा। वस्तु स्वरूप परिचय में इतनी सकरी गली है जैन सिद्धान्त की कि परम्परया गुरुचरणों के प्रसाद विना इनका मर्म नहीं समझ में आता।' मो० शास्त्र प्र० १/१७८

जिसमें एक भी धर्म नहीं उसे अनेकान्त कहते हैं। अनेकान्त वस्तु में विरोधी धर्म चेतनत्व अचेतनत्व या भव्यत्व अभव्यत्व आदि नहीं पाये जाते।

'स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने' स्याद्वाद और केवलज्ञान सर्वतत्त्वों का प्रकाशन करने वाले हैं। फरक है तो प्रत्यक्ष और परोक्ष का। श्रुतज्ञान को बताया है कि वह सब व्यञ्जन पर्याय समक्रान्त सर्वद्रव्य का ग्राही है और यह

भी कथन है कि वह केवल ज्ञान की तरह समस्त तत्त्वार्थों का ग्रहण करने वाला है। अतः आचार्यों का निर्देश है कि स्याद्वाद उस अनेकान्त के प्ररूपण की निर्दोष शैली है। यही सम्यक् श्रुतज्ञान का विषय है। सम्यक् श्रुत ज्ञान मन वाले को ही होता है उसे न इन्द्रियों की अपेक्षा है न सुनने की। होता जरूर है मतिज्ञान पूर्वक। जैसे इहा, अवाय, धारणा मन से होते हैं ऐसे ही श्रुतज्ञान भी मन से होता है। मति-ज्ञान तो नियत विषय को ही जानता है।' अनेकान्त और स्याद्वाद श्रुतकेवल ज्ञान हैं अतः इनकी महिमा जितनी गाई जाय थोड़ी है केवलज्ञान सदृश होने से। फरक है तो परोक्ष प्रत्यक्ष का है। आशा है विद्वद्वर्य्य त्रुटियों से अवगत करावेंगे ताकि आगामी संस्करणों में सुधार किया जा सके।

अनेकान्त अर्थात् श्रुतज्ञान, कुश्रुत में अनेकान्त घटित नहीं होता। अनेकान्त नहीं तो मतिश्रुत अवधि भी नहीं। अनेकान्त बिना वे कुमति कुश्रुत कुअवधि कहलायेंगे।

२६ जनवरी १९९३

भवदीय

डा० नानक चन्द

अनेकान्त और स्याद्वाद

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" जी महाराज

वस्तु के समग्र निर्णय की प्रथम आवश्यकता—वस्तु का जिसने समग्र रूप से निर्णय किया है वह पुरुष आत्मसाधना के प्रयोजन से अध्रुव और भेदों के तथ्य को गौण करके स्वभावदृष्टि में उमंगपूर्वक लगता है। कोई यह सोचे कि जब एक उस चैतन्यस्वभाव में लगना है तब तो उस ही का ज्ञान करें, अन्य का ज्ञान क्यों करते ? क्यों परिश्रम किए जाते, क्यों बुद्धि भ्रमायी जाती ? सो बात यह है कि ऐसा तो सांख्यों ने भी चाहा—केवल चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं, आत्मा का स्वरूप चैतन्य है, और वह अपरिणामी है, उसमें कभी परिणमन (अदल-बदल) होता नहीं, ऐसा सांख्यों के यहाँ माना गया है, और अन्य तत्त्व का वहाँ अत्यन्त निषेध

है। आत्मा में पर्याय नहीं, विवर्त नहीं, सुख-दुःख नहीं, ज्ञान भी नहीं और फिर जिन्हें जैन शासन में पौद्गलिक कहा वे भूत आदिक तो प्रकृतियों के धर्म है, वे तो यहाँ होंगे ही क्यों ? तो ऐसा स्वभावमात्र उन्होंने भी कहा है, फिर उसे एकान्तवाद क्यों कहते और उस ढंग से फिर क्यों नहीं कल्याण का मार्ग स्वीकार करते ? बात यह है कि अज्ञान में रहकर केवल स्वभाव की पहिचान सही नहीं बन पाती। वस्तु क्या है उसका समग्र निर्णय होना चाहिए।

वस्तु का स्पष्ट निर्णय करने के बाद प्रयोजनवश भेद और व्यवहार को गौण करके उनकी ओर उपयोग न कर एक स्वभाव की ओर दृष्टि करें। ज्ञानप्रकाश वाला व्यक्ति स्वभाव की ओर अभिमुख हो तो वह उसमें सफल होता है। जिसको और बातों का परिचय ही नहीं, वस्तु के पूरे स्वरूप को जानता ही नहीं उसको स्वभाव का निर्णय भी ठीक नहीं। इसी कारण जैन शासन में तत्त्व निर्णय के लिए, वस्तु स्वरूप के प्रतिषेध के लिए अनेकान्त, स्याद्वाद की अपूर्व देन भरी है, यह देन अन्यत्र न मिलेगी।

अनेकान्त और स्याद्वाद का विश्लेषण—पदार्थ का पूरा निर्णय करें। अनेकान्त तो है पदार्थ और स्याद्वाद है निरूपण की पद्धति। अनेकान्त विशेषण है पदार्थ का। स्याद्वाद विशेषण है कथन का। पदार्थ अनेक धर्मात्मक है। और संक्षेप

में समझें तो कोई भी पदार्थ होगा वह द्रव्यपर्यायात्मक ही है। द्रव्यशून्य पर्याय नहीं, पर्यायशून्य द्रव्य नहीं। पर्याय का नाम है व्यावृत्ति, द्रव्य का नाम है अन्वय। अन्वय-हीन व्यावृत्ति नहीं, व्यावृत्तिहीन अन्वय नहीं, बस इसी में ही भूल होने से एकान्त बन जाता। अन्वयहीन व्यावृत्ति है क्षणिकवाद, वह भी कहाँ से निकला ? जैन शासन के दृष्टि-वाद अंग में सब बात पड़ी है। जितना एकांत है यह जैन शासन से अलग नहीं है। वह सब वक्तव्य, वह सब विधान, वह सब वर्णन १२वें अंग में बना हुआ है और सम्भव है कि उनका जितना वर्णन १२वें अंग में है उसका एक आना भर भी उनका पूरा वर्णन एकान्तवादियों के न होगा। यह क्षणिक-वाद कहाँ से निकला ? ऋजुसूत्रनय के विषय के एकांत से। अब किसी ने व्यावृत्तिहीन अन्वय का एकान्त किया, व्यतिरेक नहीं है, जहाँ पर्याय नहीं है, और अन्वय सो माना ही है त्रैकालिक, वही का वही, तो वह बन गया सत्ताद्वैत, ब्रह्मा-द्वैत, साँख्य सिद्धान्त आदि। भैया, सत् है कुछ, तो वह द्रव्य-पर्यायात्मक है। वह परिणमे बिना रहता नहीं, शाश्वत वह वस्तु है और इसी कारण नयों के दो नाम किए गए—द्रव्या-र्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। गुणार्थिक नाम नहीं है नयका। द्रव्य के समझने के लिए। विधिपूर्वक क्या-क्या भेद हैं, यही गुण समझने का उपाय है। एक बार गुण की कुछ भी बात

न सोचें तो काम चल जायगा। अभेद अभेद से काम चला लें अभेद द्रव्यत्व अभेद पर्याय। यहाँ जैसे द्रव्य माने बिना काम नहीं चलता, वैसे पर्याय न मानने पर भी काम न चलेगा। प्रति समय की पर्याय अभेद है। गुणभेद करे तो पर्याय में भेद बनता है, नहीं तो एक समय की जो पर्याय है वह अखण्ड है। जो है सो है, तो जब सत् द्रव्यपर्यायात्मक है तो उसका पूरा वर्णन द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिकनय से सब समझकर बनेगा। इसे कहते हैं स्याद्वाद।

स्याद्वाद का आधार विभिन्न अनेक दृष्टियां—जो भी पहले अनेकान्त का रूप रखेंगे उनमें दो भिन्न दृष्टियाँ होनी चाहिएँ, यह स्याद्वाद से प्रमाणित करने के लिए उसका मूल है। जैसे कहा कि जीव नित्य है, जीव नित्य नहीं है, दो बातें रखीं। तो नित्य है यह द्रव्यार्थिकनय से है और नित्य नहीं है यह पर्यायार्थिकनय से है। यदि नित्य है इतना ही एकांत है अर्थात् 'नित्य नहीं है' यह धर्म छोड़ दिया तो यही तो बन गया अद्वैत अपरिणामवाद और "अनित्य है" यह ही धर्म लेकर चले और 'नित्य है' इसको छोड़ दिया तो वही हो गया क्षणिकवाद। जब वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक है तो दोनों दृष्टियों से समझें तो वस्तु पूरी समझ में आयगी। केवल शब्द की विभिन्नता से अनेकान्त नहीं, किन्तु दृष्टि की विभिन्नता से अनेकान्त है, अन्यथा सांख्य यह कह बैठें कि

तुम्हारा अनेकान्त तो हम भी मानते। बोलो, तो उन्होंने कहा कि आत्मा नित्य है, अनित्य नहीं है। हमने भी मान रखा। है ना ऐसी बात कि आत्मा नित्य है, अनित्य नहीं है। तो स्याद्वाद का यह समाधान है कि वहाँ तुम्हारे इस कथन में विरुद्ध दो दृष्टियाँ नहीं आयीं। दो दृष्टियाँ हैं—द्रव्य और पर्याय। द्रव्यदृष्टि से नित्य है और द्रव्यदृष्टि से अनित्य नहीं है। अर्थ तो दोनों का एक है। इसमें द्रव्य और पर्याय दो दृष्टियाँ घटाओ—क्या यह कहा जा सकता कि द्रव्यदृष्टि से नित्य है, पर्यायदृष्टि से अनित्य नहीं है? यह तो नहीं कहा जा सकता। तो जब वहाँ दृष्टि एक ही है तो स्याद्वाद नहीं बनता, क्योंकि सभी लोग अपने-अपने मत की तारीफ करते हैं कि मेरा मत सत्य है, असत्य नही है। तो ऐसे स्याद्वाद नहीं आता। एक दृष्टि के धर्म का विधि निषेध की एक मुद्रा से तो एक दृढ़ता के लिए कहा है, इसी तरह क्षणिकवादी कहते कि हमारा भी अनेकान्त आ गया। पदार्थ अनित्य है, नित्य नहीं है। क्षणिक है, अक्षणिक नहीं है, तो वहाँ दृष्टियाँ दो तो नही है, बस उसी का ही समर्थन है।

स्याद्वाद में प्रयुक्त धर्मकार का एवकार द्वारा दृढ़ता से निर्णय—अब कोई स्याद्वाद की मुद्रा में यह प्रश्न कर सकता है कि जहाँ दो बातें मालूम हैं कि आत्मा नित्य है और अनित्य

है । द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टि से अनित्य है, सो कहा तो, मगर तुम एक बात पर न टिक सके । निर्णय तो नहीं हुआ, निश्चय तो नहीं बना । एवकार का प्रयोग करके बताओ तो हम निश्चय समझें । एव मायने 'ही' । 'ही' का प्रयोग करें, नित्य ही है, यों बोलें । स्याद्वाद कहता है कि हाँ यह ही बात है जैन शासन में। जैन शासन में 'भी' का महत्त्व नहीं, 'ही' का महत्त्व है । प्रसिद्धि जरूर कर रखी आज की भाषा में कि अनेकान्त स्याद्वाद 'भी' लेता है, पर आर्ष परम्परा में आचार्यों ने 'भी' लगाकर इसकी मुद्रा नहीं बनायी, 'ही' लगाकर बनायी। सभी ग्रन्थों में सप्तभङ्गी की मुद्रा बनेगी तो यों मिलेगी। स्यात् अस्ति एव, स्यात् नास्ति एव, स्यात् नित्य एव, एव का अर्थ लगता और उस संदर्भ में यह अर्थ हुआ कि जीव द्रव्यदृष्टि से नित्य ही है और उसका दृढ़ता से निर्णय करें। जीव द्रव्यदृष्टि से अनित्य नहीं है या क्षणिक नहीं है, यह एक ही दृष्टि में कहा गया । धर्म का निर्णय किया गया विधि और निषेध दोनों न हो सकीं । पर्यायदृष्टि से क्षणिक है और पर्यायदृष्टि से अक्षणिक भाषाओं में । जीव पर्यायदृष्टि से अनित्य है । अनित्य ही है, जीव पर्यायदृष्टि से नित्य नही है । उस ही एक अनित्यत्व भंग का हो समर्थन है वह, जिसका विधि और निषेध से भिन्न विशेषण देकर कथन किया है वह समग्र वस्तु की बात वहाँ न आ सकी । द्रव्य और पर्यायदृष्टि से जो धर्म

कहे जाते हैं उनमें निश्चय की मुद्रा है उस दृष्टि में और इसी कारण यह संशयवाद नहीं कहलाता, यह दृढ़ता से परिपूर्ण है। अगर 'भी' का प्रयोग बने स्याद्वाद में कि द्रव्यदृष्टि से जीव नित्य भी है तो वह गलत पड़ जायेगा। इसके मायने क्या ? कि वह द्रव्यदृष्टि से अनित्य भी है, सो तो नहीं है।

लौकिक उदाहरण द्वारा "भी" और "ही" का विश्लेषण—अभी इस लोक व्यवहार में किसी का परिचय अगर करायें। मानो तीन जने बैठे हों—छोटा लड़का, उसका बाप और उसका बाप। उनका नाम कुछ भी रख लो–जैसे महेश, नरेश, सुरेश। महेश बाबा का नाम, नरेश उस जवान पिता का नाम और सुरेश उस छोटे बच्चे का नाम। अब मानो उस जवान पिता (नरेश) का परिचय देना है। वहाँ यदि यह कहा जाय कि यह नरेश महेश का पुत्र भी है तो बस वहाँ गाली-गलौज हो जायगी, लाठी चल जायगी। 'यह नरेश महेश का पुत्र भी है' ऐसा कहने में यह जाहिर हुआ कि महेश का बाप भी है, यह बात तो युक्त न रही। जहाँ दृष्टि लगी है वहाँ निर्णय पड़ा हुआ है। उसे जब यह कहेंगे कि नरेश महेश का पुत्र ही है तो वह सही बात बनेगी, और कुछ नहीं है। उस छोटे मुन्ना सुरेश की अपेक्षा कहा जाय कि यह नरेश सुरेश का बाप भी है तो मायने सुरेश का

लड़का भी नरेश हो गया। एक दृष्टि लगाकर भी उस भंग को विधि से कहो, निषेध से कहो, निषेध से कहो तो उसका अर्थ एक ही भंग है। दूसरा भंग नहीं होता। जैसे सांख्य कहते हैं कि जीव नित्य ही है, अनित्य नहीं है तो वहाँ स्याद्वाद न आ सका। वह एक ही बात का प्रतिपादन है। भले ही उसने जैनियों को छकाने या बहकाने के लिए, ऐसे शब्द के लिए प्रयोग किया है कि एक बार जो कुशल न हो वह एक बार अक्का-बक्का सा रह जायगा कि अब क्या जवाब दें? अनेकान्त हो गया, मगर जो परिचित है वह कह उठेगा कि किस दृष्टि से नित्य है और किस दृष्टि से अनित्य नहीं है। दृष्टि वह एक है। द्रव्यदृष्टि से नित्य है तो पर्यायदृष्टि से कैसा है? यह बताओ। तो दो परस्पर विरुद्ध दो दृष्टियों से धर्म आयगा उसका जो प्रतिपादन है वह है स्याद्वाद। स्यात् मायने अपेक्षा, वाद मायने कहना, अपेक्षा से कहना।

देखो सारकी बात समस्त शब्द स्याद्वादमय है। समस्त द्रव्य स्याद्वादमय हैं और उसका इतना अधिक अभ्यास है सब जीवों को कि अपेक्षा का नाम न लें और इस 'ही' का नाम न लें, फिर भी उस धर्म का सही-सही प्रतिपादन होता है। भंग में तीन शब्द हैं—स्यात् अस्ति एव, स्यात् और एव ये उसकी सहायता के लिए हैं और विषय है वह बीच में पड़ा हुआ

अस्ति। जैसे यात्रियों से परिपूर्ण डिब्बा है, मगर दुर्गम पहाड़ पर रेलगाड़ी ले जाने के लिए एक आगे का इंजन और एक पीछे का इंजन है, तो ऐसे ही स्यात् और एव—इन दो इंजनों के बीच धर्म का डिब्बा पड़ा हुआ है, जिससे वह गलत मार्ग पर नहीं जा सकता और "स्यात् एव" सब शब्दों के साथ लगा है। कोई बोले तो, न बोले तो, और उसी तरह लोग व्यवहार कर रहे हैं। तो जिसके बल पर खाये, पिये, जिये उसी का निषेध करे, कृतघ्न बने, यह प्रकृति हो रही है एकान्तवादियों की। शब्द सब स्याद्वाद से भरे हैं यह कैसे जाना ? कुछ भी आपने बोला, जैसे कहा—चौकी, यह चौकी है और कुछ नहीं, यह कैसे जाना यह चौकी के स्वरूप से सत् और पर रूप से असत् है, यह बात वहाँ पड़ी हुई है।

एकदृष्टि के निर्णय में एक धर्म को ही समझने में विधि निषेध और दो दृष्टि के निर्णय में स्याद्वाद से विरुद्ध धर्मात्मक समझने में विधि निषेध—चौकी एक फुट की है, ऊँचाई की अपेक्षा कही गई है और उँचाई की अपेक्षा एक फुट की ही है, हीनाधिक नहीं। स्यात् और एव का प्रयोग व्यवहार में बार-बार करने में कुछ अटपट सा जंचने लगेगा। कहाँ तक करेंगे, कितने शब्द हैं, कितने वाक्य हैं, कितने पद हैं, बोलते रहते हैं, मगर जहाँ आवश्यकता हुई समझाने के लिए वहाँ स्यात् और एव का

प्रयोग होता है। जहाँ समझो निश्चय होता है बस धर्म भर बोल दिया। समझने वाले समझ गए। जैसे दर्शनशास्त्र में व्यवस्था है ५ अंगों से अनुमान को सिद्ध करने की। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन, मगर जब पंडित पंडितों का शब्दार्थ होता है, पढ़े-लिखे लोग परस्पर बोलते हैं वहाँ ५ अंगों का उपयोग नहीं चलता। यद्यपि प्रत्येक अनुमान ५ अंगों में पड़े हुए है, मगर परिणति में, बोल-चाल में प्रतिज्ञा, हेतु—इन दो का ही प्रयोग होता है। यदि वहाँ कोई उदाहरण उपनय निगमन का प्रयोग करने लगे तो विद्वान् भी उस सभा में मन में यों हँसने लगेंगे कि क्या बच्चों जैसी बात करते हो? हैं पाँचों ही अग, मगर प्रतिज्ञा और हेतु से ही सब ज्ञान होता है, इसलिए प्रयोग नहीं होता, ऐसे ही हम आपके बोलचाल सब बातों में केवल धर्म शब्द के कहने से ही सब समझ जाते हैं, इसलिए स्यात् और एवका हर शब्द के साथ प्रयोग नहीं चलता, पर समझ सब जाते हैं। सारे शब्द स्याद्वाद से स्याद्वाद का प्रसाद पाये हुए हैं और सारे पदार्थ अनेकान्त का प्रसाद पाये हुए हैं। अनेकान्त को मना करने वाले खुद अनेकान्तमय हैं। शब्द को एक ओर, एक ही अर्थ की ओर घसीटने पर भी शब्द स्वयं अपने में स्याद्वाद रूप हैं। फिर वचन, वाक्य, सिद्धांत, ये सब तो स्याद्वाद में हैं ही।

स्याद्वाद से आत्मवस्तु का निर्णय कर प्रयोजनानुसा अध्रुव तत्त्व को गौण कर ध्रुव तत्त्व में लीन होने के पौ का कर्त्तव्य––पहले स्याद्वाद से अनेकांतात्मक वस्तु क निर्णय किया, इसी तरह निर्णय कर चुकने के बाद वह पा होता है तो इसमें से भेद पर्याय व्यवहार इनको गौण कर एक ध्रुव स्वरूप में अपना आत्मतत्त्व स्वीकार करें, उ निज स्वरूप में अपनी दृष्टि दे, उसको सफलता मिलती क्योंकि वह अज्ञानी नहीं है। वस्तु के बारे में पूर्णतया ज्ञानी है इस तरह जो भी सत् है वह द्रव्यपर्यायात्मक है औ आदेश की दृष्टि से द्रव्य और पर्याय के लक्षण जुदे हैं औ वस्तुत्व की दृष्टि से द्रव्य और पर्याय अभिन्न हैं, तन्मय हैं जो कोई द्रव्य मात्र माने, कोई पर्यायमात्र माने, को द्रव्य से पर्याय को भिन्न माने, कोई द्रव्य और पर्याय को ए मानें, ऐसे इन चार आधारों पर मतमतान्तरों की सृष्टि हु है। इसके आगे और कुछ बढ़ें। वर्णन का वैचित्र्य सुनक कहा कि न द्रव्य है, न पर्याय है। इसमें खूब खोज लो कि जितने एकान्त मत चले हैं वे सब इसी के ही फल से चले हैं जो कहते हैं स्वरूपविपर्यय, भेदाभेदविपर्यय और कारणविपर्य इन विपर्ययों से एकान्तवाद चले हैं। [illegible] अपना काम स्याद्वाद से वस्तु का पूर्ण निर्णय करना, और निर्णय कर फिर आत्महित की दृष्टि से ऐसी अपनी भावना बनाना।

卐 आभार प्रदर्शन 卐

१०१) श्रीमति सुधा जैन धर्मपत्नि श्री सत्येन्द्र कुमार जैन
डालमपाड़ा, मेरठ।

१०१) श्रीमति पमपम जैन धर्मपत्नी श्री योगेश कुमार जैन
मेरठ।

५१) श्रीमति सुशीला त्यागी
८७५, इन्द्रा नगर, ब्रह्मपुरी, मेरठ।

सहजानंद साहित्य मंगाने का पता :

मंत्री श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर, मेरठ।

फोन : ५४१२१७

ड्राफ्ट एकाउन्ट पैयी चैक श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के नाम भेजें।

साहित्य एवं कैसट बिक्री केन्द्र :

श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर

हस्तिनापुर।

ड्राफ्ट भेजने का पता :

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सहायतार्थ एकाउन्ट पैयी चैक या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजें।

पुस्तकें मंगाने के पते :—

खेमचन्द जैन

मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)

फोन : ५४१२१७

卐◆◆卐

सुमेरचन्द जैन

मन्त्री, भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मन्दिर

मंत्री निवास, १५, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर